



## प्राच्यविद्या : धर्म शिक्षा की महत्ता

डॉ. (श्रीमती) ज्योति शर्मा

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, आर्य कन्या महाविद्यालय शाहबाद (भारकंडा) हरियाणा.

समाज के विकास का आधारभूत तत्त्व शिक्षा है। शिक्षा के पर्यायवाची रूप में विद्या तथा ज्ञान शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। विद्या शब्द की निष्पत्ति "विद्" धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, जानना। आधुनिक विद्या का आधार प्राच्यविद्या ही है। प्राचीन वैदिक, साहित्य, दर्शन, कला, भारतीय धर्म का अध्यापन पुराण, उपनिषद् योग, आयुर्वेद, पाणिनीय व्याकरण, भारतीय दार्शनिक साहित्य, बौद्ध तथा जैन दर्शन आदि प्राच्यविद्या में समाहित हैं। इनका अर्थ संकुचित न होकर व्यापक है।



इनमें धर्मशिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण है। "धर्म" शब्द धृञ् धातु से, मन् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है – पौषण, नैतिक, नियम, आचरण आदि। महर्षि जैमिनि के अनुसार विधेय कार्यों को करने की वेदाज्ञा ही धर्म है।<sup>1</sup> जिससे संसार में अभ्युदय हो और पारलौकिक कल्याण की सिद्धि हो वही धर्म कहलाता है।<sup>2</sup> वस्तुतः "धार्यते इति धर्मः, जो धारण किया जाए वही धर्म है। धर्म अर्थात् कर्तव्य। प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने धर्म होते हैं। उसका सदुपयोग करने की ही आज्ञा दी गई है। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् आचार्यों द्वारा यह सारभूत उपदेश दिया जाता था। "सत्यं वद"। धर्मं चर। स्वाध्यायात् मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्।<sup>3</sup> वेद प्रतिपादित वेदज्ञ विद्वानों तथा श्रेष्ठ लोगों द्वारा मनुष्य-जीवन के चार पुरुषार्थों – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में सर्वप्रथम धर्म को ही अभिहित किया गया है तथा महत्व दिया गया है। इस धर्म को शास्त्रज्ञान के बिना नहीं समझा जा सकता है। शास्त्रों में कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था ऋषियों द्वारा की गई है। देशकाल परिस्थिति के साथ धर्म का सम्बन्ध है। धर्माचारण से ही इस संसार में सुख तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत् में कहा गया है कि जब धर्म के लुप्त हो जाने पर अर्थ और काम में फंसे हुए लोग कुत्तों एवं बन्दरों के समान वर्णसंकर हो जाते हैं।<sup>4</sup> प्राच्य-विद्या में धर्म को विशेष स्थान दिया जाता था। कोई भी कर्म छोटा अथवा बड़ा हो, वह धर्म के अनुसार करने पर भी सिद्ध होता है। बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा में ही धर्म सम्बन्धित ग्रंथों एवम् उनमें निहित उपदेशों को पढ़ाया जाता था, जिसका उद्देश्य था कि वह भविष्य में किसी भी क्षेत्र में जाए धर्मयुक्त आचरण अवश्य करेगा। मानव के शरीर का सर्वस्व मानकर इसकी रक्षा करने की बात कही गई है –

"सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन् पापमपोहति।  
शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः"।<sup>5</sup>

गीता के अनुसार स्वधर्म की पालना करना ही सर्वोच्च कर्म है।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।  
धर्मयाद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।<sup>6</sup>

भगवान् कृष्ण अर्जुन को उसके धर्म के प्रति निष्ठा को बताते हुए कहते हैं कि –तुम क्षत्रिय हो, अतः तुम्हारे लिए क्षात्रधर्म से अधिक कुछ नहीं है। और यदि तुम इस धर्म से पलायन करते हो तो यह सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय होगा।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।  
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्तोप्नोति किल्बिषम् ।<sup>7</sup>

परन्तु यदि आज की स्थिति देखें तो आज न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में हर स्थान पर धर्म का अधःपतन दिखाई दे रहा है। शाश्वती शान्ति को अधिकृत कर उच्च स्वर में उसकी उद्घोषणा करते हुए बड़े-बड़े नेता लोग भी अपने-अपने राष्ट्रों को विध्वंसक युद्धों के लिए तैयार कर रहे हैं। अधर्म का अधर्म के द्वारा जीतने का प्रयास किया जा रहा है। धर्म का ज्ञान क्या है? उसकी अनुष्ठानरीति क्या है? इत्यादि विषयों के ज्ञान में सभी मूर्ख दिखाई देते हैं। इस संसार में व्याप्त दुःखों एवं कठिनाईयों का कारण हमारे भारतीय सनातन धर्म को भूलना ही है। अतः आज धर्म शब्द को समझने की अत्यन्तावश्यकता है।

सर्वप्रथम धर्माचरण ही करना चाहिए। "धर्म" शब्द की व्युत्पत्ति "धृञ्" धारणों धातु से मन्-प्रत्यय लगाकर हुई है जिसका अर्थ है – धारण करना अर्थात् पदार्थ के धारक को "धर्म" कहते हैं। धर्म जीवन की एक पद्धति है। खाना, पीना, उठना, बैठना, सोना, बोलना इत्यादि सभी धर्म के अंग हैं। धर्म माता-पिता, पुत्र, पत्नी आदि पारिवारिक व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक शैक्षणिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक इत्यादि विभिन्न प्रकार के कर्मों एवं कर्तव्यों की एक कसौटी निर्धारित करता है तथा वह है जीवन के आध्यात्मिक एवं भौतिक पक्षों का सन्तुलन। मनुष्य की आध्यात्मिक वृत्ति जीवन के विभिन्न व्यवसायों एवं काम पर नियन्त्रण करवाती है। वस्तुतः धर्म एक विज्ञान भी है। यह सनातन एवं शाश्वत है। यह जीवन जीने की एक कला है। यह व्यक्तिगत, सामाजिक, लौकिक पारलौकिक, दैहिक, बौद्धिक, मानसिक आदि सभी क्षेत्रों को सुखमय बनाता है। इस प्रकार धर्म शब्द का अर्थ अतिव्यापक है। धर्म सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है। महाभारत में कहा है –

"धारणाद् धर्मः इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः" ।<sup>8</sup>

परन्तु वे गुण कौन से हैं जो जगत् को धारण करते हैं। वे हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।  
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।<sup>9</sup>

यदि मनुष्य अपने जीवन में इन गुणों को दृढ़ मन से धारण करता है, तो उसकी लौकिकी एवं परलौकिकी उन्नति सम्भव है। धर्म ही है जो मनुष्यों में स्फूर्ति पैदा करने वाला, अनन्त चेतना को जगाने वाला एवं सत्कर्मों की ओर ले जाने वाला है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि धर्म ही मनुष्य की रक्षा करने वाला, उन्नति की ओर ले जाने वाला अवनति से बचाने वाला, ज्ञानविज्ञानादि गुणों को सम्पादिक करने वाला एवं आस्तिक बुद्धि को पैदा करने वाला है। यही जीवन का सार है। धर्मविहीन तो पशु कहा जाता है।

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"<sup>10</sup> कहकर धर्म का मूल आधार वेद कहा गया है। वैदिक ऋषि अग्नि देव की स्तुति कर अज्ञान के तम को दूर कर निरन्तर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं।<sup>11</sup>

इस संसार में दो प्रकार की प्रवृत्ति वाले मनुष्य रहते हैं। एक धर्मयुक्त दूसरे अधर्मयुक्त। अधर्मयुक्त लोग जीवन में असत्यादि भाषण एवं चालाकी से बहुत समृद्धि तो प्राप्त कर लेते हैं परन्तु यह वृद्धि अल्पकालिकी और अन्ततः विनाश के लिए ही होती है। इसके विपरीत धर्मयुक्त मनुष्यों की वृद्धि बहुत विलम्ब से प्राप्त होने वाली होती है। एक मात्र धर्म ही है जो मनुष्य को

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय में सदैव सन्मार्ग पर मित्रवत् नियोजित करता है। धर्म की सार्वलौकिकता, सार्वभौमिकता एवं विश्वजनीत्व संसार के हित सम्पादन से ही प्रवृत्त होता है। धर्म ही सभी को शिक्षा देता है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।  
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।<sup>12</sup>

वस्तुतः धर्म किसी से द्वेष करने की शिक्षा नहीं देता है। वे जो विभिन्न सम्प्रदाय समाज में प्रचलित हैं, वे मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना, इस उक्ति के अनुसार प्रवृत्त हो रहे हैं। सभी धर्मों में आचारमूलक सत्य-अहिंसा आदि रूप धर्म की समानता एवम् अनिवार्यता कही गई है। इनके पालन करने में किसी का भी विरोध नहीं है। इस प्रकार धर्म मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाता है। जब सभी मनुष्य देवतुल्य हो जाएंगे अथवा बनने का प्रयास करेंगे तो अनायास ही संसार में प्रगति की एक नई विधा प्रवर्तित होगी।

इस प्रकार व्यक्ति का मानसिक, कायिक एवं वाचिक व्यवहार धर्माचारण से ही सम्भव है। धर्माचारण के बिना ही आधुनिक समाज में मनुष्य भ्रष्टाचार आतंकवाद, चोरी, अहिंसा, व्यभिचार, बेइमानी आदि कुत्सित कार्यों से संलिप्त है। वह यह नहीं जानता है कि अधर्ममार्ग से कमाए धर्नाजन का दारुण परिणाम होगा। धर्ममार्ग से प्राप्त स्वल्प धन भी स्थायी एवं सभी कार्यों का साधक होगा। इसलिए महाभारत में वेदव्यास ने ठीक ही कहा है

धर्ममेवानुवर्तस्व न धर्माद् विद्यते परम्।  
धर्मस्थिता हि राजानो जयन्ति पृथिवीमिमाम्।<sup>13</sup>

इसी प्रकार –

“धर्मादर्थश्च कामश्च, सः धर्मः किं न सेव्यते”।<sup>14</sup>

आचार्य चाणक्य के मत में धर्म से रहित अधर्मी व्यक्ति जीवित रहने पर भी मरे हुए के समान है जबकि धर्मयुक्त मनुष्य मृत्यु के बाद भी जीवित रहता है।<sup>15</sup>

इस प्रकार संक्षेप में यही कह सकते हैं कि धर्म जीवन में सर्वदा एवं सर्वथा अनिवार्य है। उसी का आश्रय प्राप्तकर व्यक्ति ऐहिक और आमुष्यिक सुख को प्राप्त करता है। अतः यतः धर्मः ततो जयः इस उक्ति को मानते हुए प्राच्य विद्या में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

- 1 अथातो धर्मजिज्ञासा लक्षणोऽर्थो धर्मः। पूर्व मीमांसा दर्शन 1/2
- 2 यतोभ्युदयानि श्रेयसंसद्भिः सः धर्मः। – वैशेषिक दर्शन 1/1/2
- 3 तैत्तिरीय संहिता – 1-11-1 से 3
- 4 श्रीमद्भागवद् – 5-18-45
- 5 शंखस्मृति – 17/64,65
- 6 श्रीमद्भगवद्गीता – 2/31
- 7 तदेव 18/47
- 8 महाभारत
- 9 मनुस्मृति 6.12
- 10 मनुस्मृति 2.6
- 11 अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्। – ऋग्वेद 1-1
- 12 अथर्ववेद – 3/15/1 हिन्दु संस्कृति अंक पृष्ठ-61
- 13 महाभारत – शान्तिपर्व – 91/52
- 14 महाभारत
- 15 जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम्।

मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥